Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.3, October 2024

मुगलकालीन कृषक एवं कृषि व्यवस्था का मूल्यांकन

डा0 अम्बिका प्रसाद तिवारी
एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास)
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर (उ0प्र0)

****

शोध-सारांश:*यह शोध-पत्र मध्यकालीन भारत की कृषि व्यवस्था और कृषक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर आधारित है। इस अध्ययन में 'किसान' शब्द के विभिन्न अर्थों, उनके वर्गीकरण, भूमि स्वामित्व, श्रम व्यवस्था और कृषि उपज के वितरण को विस्तार से विश्लेषित किया गया है। शोध में उल्लेख है कि मध्यकालीन काल में किसान केवल कृषि उत्पादन करने वाला नहीं था, बल्कि वह समाज और राज्य व्यवस्था में भी सक्रिय भागीदार था।किसानों को तीन प्रमुख वर्गों में बाँटा गया- खुद-काश्त, पाही-काश्त और मुजारियान। खुद-काश्त किसान अपनी भूमि पर स्वयं खेती करते थे और उन्हें भूमि पर उत्तराधिकार और बिक्री का अधिकार प्राप्त था। पाहीकाश्त किसान दूसरे की भूमि पर मजदूरी या बँटाई पर खेती करते थे, जबकि मुजारियान किसान सीमित भूमि के साथ साझेदारी आधारित कृषि कार्य करते थे।श्रमिकों की स्थिति भी जटिल थी। वे न केवल कृषि श्रम में संलग्न थे, बल्कि जमींदारी, जातीय विभाजन और सामाजिक शोषण का भी सामना करते थे। सामाजिक संरचना के कारण निम्न जातियाँ खेतों में अधिक श्रम करती थीं, परंतु उन्हें भूमि स्वामित्व नहीं मिलता था। कृषि तकनीक, सिंचाई और फसलों की विविधता से उत्पादन बढ़ा, लेकिन इससे किसान की सामाजिक हैसियत में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। यह कहा जा सकता है कि कृषि व्यवस्था मध्यकाल में विस्तृत और वर्गीकृत थी, किन्तु सामाजिक असमानताएँ उससे कहीं अधिक गहरी थीं।*

मुख्य शब्दावली: *कृषक, खुद-काश्त, पाही-काश्त, मुजारियान, सामाजिक असमानता, भू-स्वामित्व, फसल-चक्र*

****

कृषि, मुग़ल साम्राज्य की अर्थव्यस्था का आधार स्तम्भ था। भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में सबसे पहले मोरलैण्ड ने कृषकों के महत्व को उजागर किया। तदुपरान्त इरफान हबीब, डी० डी० कोशाम्बी, राम शरण शर्मा, कुँवर मुहम्मद अशरफ, डेनिएल थोरनर जैसे विद्वान इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान के आर्थिक इतिहास को अपने लेखन का केन्द्र बनाकर लिखना प्रारम्भ किया। कृषकों के सन्दर्भ में अनेक परिभाषाएं विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं किन्तु भारतीय कृषक के सन्दर्भ में इतिहासकारों ने कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी है। कृषक, शब्द को परिभाषित करते हुए प्रोफेसर इरफान हबीब ने लिखा कि 'कृषक' से तात्पर्य उस जनसाधारण से है जो अपने निजी कृषि के उपकरणों व साधनों और पारिवारिक श्रम द्वारा स्वयं अपनी खेती करता है। डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड ने 'कृषक' शब्द की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'कृषक'से अभिप्राय उस वर्ग से है, जो अपने लोभ के लिए, अपने परिवार वालों या मजदूरों की सहायता से खेत जोतता हो, चाहे उसकी भूमि पर स्वामित्व या स्थायित्व की शर्तें किसी प्रकार की क्यों न हो। कैथलीन गफ के अनुसार ऐसे व्यक्ति जो आदिम संसाधनों के प्रयोग द्वारा कृषि या सम्बन्धित उत्पादन करते हों व अपनी उपज का एक भाग या उसके बराबर जमींदार अथवा राज्य के प्रतिनिधियों को सौंपते हों, कृषक के श्रेणी में आते थे। इस तरह स्पष्ट है कि 'कृषक'से संबंधित अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं किन्तु कोई भी परिभाषा सर्वमान्य की श्रेणी में नहीं है।

मुगल कालीन कृषि व्यवस्था को जानने के सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों में एक था आइन-ए-अकबरी जिसे अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल ने लिखा था। खेतों

की नियमित जुताई की तसल्ली करने के लिए, राज्य के नुमाइंदों द्वारा करों की उगाही के लिए और राज्य व ग्रामीण सत्तापोश यानी कि जमींदारों के बीच के रिश्तों के नियमन के लिए जो इंतजाम राज्य ने किए थे, उसका लेखा-जोखा इस ग्रंथ में बड़ी सावधानी से पेश किया गया है। मुगल काल के भारतीय-फारसी स्रोत किसान के लिए आमतौर पर रैयत या मुजरियान शब्द का इस्तेमाल करते थे। साथ ही, हमें किसान या आसामी जैसे शब्द भी मिलते हैं। सत्रहवीं सदी के स्रोत दो किस्म के किसानों की चर्चा करते हैं -खुद-काश्त व पाहि-काश्त । पहले किस्म के किसान वे थे जो उन्हीं गाँवों में रहते थे जिनमें उनकी जमीन थीं। दूसरे पाहि-काश्त वे खेतिहर थे जो दूसरे गाँवों से ठेके पर खेती करने आते थे। लोग अपनी मर्जी से भी पाहि-काश्त बनते थे, मसलन, अगर करों की शर्तें किसी दूसरे गाँव में बेहतर मिलें ।

कृषक द्वारा नियन्त्रित भू-क्षेत्र के विस्तार, उनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले भाड़े के श्रम की अधिकता, सम्पत्ति संबंधों तथा धन-सम्पत्ति के आधार पर मुगल कालीन कृषक समुदाय को प्रोफेसर सतीशचन्द्र ने स्पष्ट रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया- खुद-काश्त, पाही-काश्त तथा मुजारियन । मुगलकालीन सरकारी दस्तावेजों में ऐसे किसानों को खुद-काश्त कहते थे जो अपनी जमीन के मालिक होते थे (मालिक-ए-जमीन) और अपने हल बैल द्वारा खेती करते थे। इस श्रेणी के किसानों को मुगल साम्राज्य के अलग-अलग भागों में अलग-अलग नामों से जाना जाता था यथा राजस्थान में गावेती और गारूहाला, महाराष्ट्र में थलवाहिक या मिरासी अथवा मिरासदार । खुद-काश्त किसान ऐसे किसान थे जो उसी गांव की भूमि में खेती-बाड़ी करते थे, जिसके वे निवासी थे। वे अपनी जमीन के मालिक होते थे और गांव की सबसे उपजाऊ जमीन उसी के कब्जे में होती थी। उसे अपनी भूमि पर स्थायी अधिकार प्राप्त थे तथा जमींदार का दर्जा हासिल था।

खुद-काश्त किसान को अपनी सम्पत्ति बेचने का अधिकार था तथा पुरुषों के वंशगत उत्तराधिकार की प्रथा को मान्यता प्राप्त थी। भूमि पर स्वामित्व अधिकार के बदलने पर नया पट्टा लिखा जाता था। पट्टा नये स्वामी पर भू-राजस्व अदा करने की जिम्मेदारी डालता था, जिसके आश्वासन में उसे मुचलका जमा करना पड़ता था तथा जामिन भी देना पड़ता था। इस श्रेणी के किसान अपनी खेती-बाड़ी में श्रमिकों की सेवाओं का प्रयोग करते थे, उनमें महंगे और अधिक पैदावार देने वाले साधन जुटाने की क्षमता थी। वे प्रायः बटाई पर खेती करते थे। यदि बीज आदि का प्रबन्ध भू-स्वामी किसान द्वारा किया जाता था तो कृषिगत श्रमिक उपज का 1/3 भाग पाता था, और यदि बीज आदि की व्यवस्था श्रमिक द्वारा की जाती थी तो वह उपज का 2/3 भाग प्राप्त करता था तथा भू-स्वामी किसान 1/3 भाग। जंगलों की लकड़ी लाने, गाय-चराने तथा तालाब में मछली मारने का अधिकार उन्हें होता था किन्तु उनका सबसे बड़ा अधिकार यह होता था कि उनसे लगान प्राचीन काल से चली आ रही निश्चित दर के हिसाब से अर्थात रियायती दर से वसूल की जाती थी जबकि अन्य श्रेणी के किसानों के ऊपर लगने वाले लगान की दर को बढ़ाया भी जा सकता था। प्रायः गांव के मुकद्दम, पटवारी आदि इसी श्रेणी के होते थे और वही गांव के पंचायत के प्रमुख होते थे। मुगल साम्राज्य में लगान हर किसान पर निर्धारित किया जाता था, किन्तु सामूहिक रूप से उसके अदा करने की जिम्मेदारी सारे गांव, विशेष रूप से खुदकाश्त किसानों के ऊपर होती थी।

मुगलकाल के कृषकों की दूसरी श्रेणी 'पाही-काश्त' कहलाती थी। पाही के लिए राजस्थान में पालती और महाराष्ट्र में उपरी शब्दों का प्रयोग किया जाता था। पाही काश्त कृषकों की श्रेणी में ऐसे कृषक आते थे जो पड़ोस के गांव से या किसी दूसरे की जमींदारी से खेती करने के लिए गांव में आता था। बहुत से पाही किसानों के पास स्वयं के हल-बैल होते थे। ऐसे पाहियों को गांव में बसने और बंजर जमीन जोतने की अनुमति मिल जाती थी। जब तक वे लगान देते थे। तब तक इनको बेदखल नहीं किया जाता था। उन्हें खुद काश्त किसानों जैसा स्तर व विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होता था। पाही किसानों के पास केवल उतनी ही जमीन होती थी जितनी वह केवल अपने परिवार के श्रम का उपयोग करके उस पर खेती कर सकते थे। वे प्रायः भाड़े पर श्रम हेतु मजदूरों का खर्च वहन करने की क्षमता नहीं रखते थे। कुछ पाही ऐसे भी होते थे जो नीच जाति के होते थे और उनके पास अपने हल-बैल नहीं होते थे। ऐसे पाही प्रायः बटाईदार के रूप में खेती करते थे। मुगलकालीन तीसरे श्रेणी के कृषक थे- मुजारियान अर्थात् मौसमी अंश हिस्सेदार। ये ऐसे किसान थे, जिनके अधिकार में इतनी कम भूमि होती थी कि वह भूमि उनके परिवार के सम्पूर्ण श्रम को काम में लाने के लिए अपर्याप्त थी, अतः वे अपनी भूमि के अतिरिक्त खुदकाश्त कृषकों के बटाईदार के रूप में कार्य करते थे।

विस्तृत अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मुजारियान तथा पाही-काश्त के मध्य यह अन्तर था कि पर्याप्त भूमि होने पर तथा नजराना देने पर पाही काश्त तो खुद-काश्त बन सकता था लेकिन मुजारियन को कभी इस बात की अनुमति नहीं थी कि वह समाज में अपनी वर्तमान स्थिति से बाहर आये अर्थात वह जीवनपर्यन्त की तरह ही रहता था। प्रोफेसर राधेश्याम ने भी किसानों को तीन श्रेणियों में बांटा है- प्रथम, वे धनी किसान जो कि मजदूरों की सहायता से कृति करते थे। द्वितीय, वे मध्यम किसान जो अपने परिवार के श्रम की सहायता से कृषि करते थे। तृतीय, वे किसान जिनके पास इतनी कम भूमि होती थी कि उन्हें कृषि के लिए अपने सम्पूर्ण परिवार के श्रम के सहयोग की आवश्यकता न पड़ती हो

इसके अतिरिक्त उजरती मजदूर भी अच्छी संख्या में गांव में निवास करते थे। ऐसे उजरती मजदूरों का एक बड़ा भाग बदहाल हो चुके किसानों से ही नहीं बल्कि तथा कथित 'भृत्य' जातियों से भी आता था। भूमि के स्वामी बनने से रोक दिये गये, इन निचली जातियों के सदस्य एक विशाल ग्रामीण सर्वहारा के अंग थे, जिसका बड़ा आकार ही इन लोगों के खेतों में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर करता था। ऊँची जातियों का वास्तविक दमन न हो तो भी भारत 'सामाजिक अभियान्त्रिकी' की एक सोची समझी तरकीब के जरिए ऐसा एक वर्ग पैदा करने वाला सम्भवतः अकेला देश था। वास्तव में परिवर्तनशील समाज में किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके पास उपलब्ध जीवनोपयोगी संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है। विकास की दौड़ में विभिन्न कारणों से पिछड़ गया व्यक्ति पीछे रह जाता है। इसी तरह मुगल कालीन कृषि आधारित अर्थव्यस्था में कृषक वर्ग भी विभिन्न कारणों से श्रेणियों में विभक्त हो गये तथा जिसके फलस्वरूप कालान्तर में सबल कृषक निर्बल कृषक पर भारी पड़ने लगे।

सिंचाई के तकनीक एवं साधन

मध्यकाल में कृषि भूमि की बहुतायत, मजदूरों की उपलब्धता और किसानों की गतिशीलता की वजह से कृषि का

लगातार विस्तार हुआ। इस समय खेती मुख्य रूप से निर्वाहक प्रकार की थी, अतः खाद्यान्न फसलें मुख्यतः चावल, गेहूँ, ज्वार इत्यादि सबसे ज्यादा उगाई जाती थीं। जहां वर्षा प्रति वर्ष 100 सेमी0 या उससे ज्यादा बारिश होती थी, वहाँ चावल की खेती होती थी। जबकि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में गेहूँ व ज्वार-बाजरे की खेती ज्यादा की जाती थी। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी फसलें भी थीं जिनके लिए अधिक पानी की आवश्यकता थी, अतः इनके लिए सिंचाई के कृत्रिम साधन अपनाए गए।

सिंचाई कार्यों को राज्य की मदद भी मिलती थी। उत्तर भारत में राज्य ने कई नयी नहरें व नाले खुदवाए और कई पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई, जैसे कि शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान पंजाब में शाह नहर । वैसे तो खेती मेहनतकशी का काम था लेकिन किसान ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल भी करते थे जो अकसर पशुबल पर आधरित होती थीं। ऐसा एक उदाहरण लकड़ी के उस हल का दिया जा सकता है जिसको एक छोर पर लोहे की नुकीली धार या फाल लगाकर आसानी से बनाया जा सकता था। ऐसे हल मिट्टी को बहुत गहरे नहीं खोदते थे जिसके कारण तेज गर्मी के महीनों में नमी बची रहती थी। बैलों के जोड़े के सहारे खींचे जाने वाले बरमे का इस्तेमाल बीज बोने के लिए किया जाता था। लेकिन बीजों को हाथ से छिड़क कर बोने का रिवाज ज्यादा प्रचलित था। मिट्टी की गुड़ाई और साथ-साथ निराई के लिए लकड़ी के मूठ वाले लोहे के पतले धार काम में लाए जाते थे।

फसलों के प्रकार

मौसम के दो मुख्य चक्रों के दौरान खेती की जाती थी: एक खरीफ (पतझड़ में) और दूसरी रबी (वसंत में)। यानी सूखे इलाकों और बंजर जमीन को छोड़ दें तो ज्यादातर जगहों पर साल में कम से कम दो फसलें होती थीं। जहाँ बारिश या सिंचाई के अन्य साधन हर वक्त मौजूद थे वहाँ तो साल में तीन फसलें भी उगाई जाती थीं। इस वजह से पैदावार में भारी विविधता पाई जाती थी। उदाहरण के तौर पर, आईन-ए-अकबरी हमें बताती है कि दोनों मौसम मिलाकर, मुगल प्रांत आगरा में 39 किस्म की फसलें उगाई जाती थीं जबकि दिल्ली प्रांत में 43 फसलों की पैदावार होती थी। बंगाल में सिर्फ चावल की 50 किस्में पैदा होती थीं। हालाँकि दैनिक आहार की खेती पर ज्यादा जोर दिया जाता था मगर इसका मतलब यह नहीं था कि मध्यकालीन भारत में खेती सिर्फ गुजारा करने के लिए की जाती थी। स्रोतों में हमें अकसर जिन्स-ए-कामिल (सर्वोत्तम फसलें) जैसे शब्द मिलते हैं। मुगल राज्य भी किसानों को ऐसी फसलों की खेती करने के लिए बढावा देते थे क्योंकि इनसे राज्य को अधिक कर मिलता था।

कपास और गन्ने जैसी फसलें बेहतरीन जिन्स-ए-कामिल थीं। मध्य भारत और दक्कनी पठार में फैले हुए जमीन के बड़े-बड़े टुकड़ों पर कपास उगाई जाती थी, जबकि बंगाल अपनी चीनी के लिए मशहूर था। तिलहन (जैसे सरसों) और दलहन भी नकदी फसलों में आती थीं। इससे पता चलता है कि एक औसत किसान की जमीन पर किस तरह पेट भरने के लिए होने वाले उत्पादन और व्यापार के लिए किए जाने वाले उत्पादन एक दूसरे से जुड़े हुए थे।

सत्रहवीं सदी में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से कई नयी फसलें भारतीय उपमहाद्वीप पहुँचीं। मक्का भारत में अफ्रीका और स्पेन के रास्ते आया और सत्रहवीं सदी तक इसकी गिनती पश्चिम भारत की मुख्य फसलों में होने लगी। टमाटर, आलू और मिर्च

जैसी सब्जियाँ नयी दुनिया से लाई गई। इसी तरह अनन्नास और पपीता जैसे फल वहीं से आए।

मध्यकालीन भारत की कृषि व्यवस्था एक जटिल, बहुपरतीय और सामाजिक रूप से विभाजित संरचना थी, जो केवल आर्थिक गतिविधि न होकर, सामाजिक, राजनैतिक और जातीय ताने-बाने से गहराई से जुड़ी हुई थी। इस शोध पत्र के माध्यम से स्पष्ट होता है कि किसान वर्ग को एकसमान रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि उनके भीतर भी सामाजिक, आर्थिक और अधिकार आधारित विभाजन मौजूद थे।

खुद-काश्त किसान अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र थे, जिनके पास भूमि पर मालिकाना हक, उत्तराधिकार और स्थानांतरण की सुविधा थी। इसके विपरीत पाही-काश्त और अर्धस्वतंत्र किसानों को भूमि पर स्वामित्व प्राप्त नहीं था, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति और आर्थिक सुरक्षा सीमित हो जाती थी। कृषि श्रमिकों की स्थिति सबसे दयनीय थी, जो सामान्यतः निम्न जातियों से आते थे और जिन्हें भूमि से वंचित रखा गया था।

भूमि अधिकार, उपज का वितरण, श्रम का शोषण और जातिगत भेदभाव सभी कारक किसानों की सामाजिक गतिशीलता को सीमित करते थे। राज्य द्वारा लगाया गया कर और स्थानीय जमींदारों द्वारा की गई उगाही किसान की आर्थिक स्थिति को और जटिल बनाते थे।

यद्यपि कृषि तकनीकों, सिंचाई साधनों और फसल विविधता में कुछ प्रगति हुई, फिर भी सामाजिक असमानताओं और संरचनात्मक बाधाओं के कारण किसानों की स्थिति में ठोस सुधार नहीं हो सका। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्यकालीन भारत की कृषि व्यवस्था, किसानों के लिए एक साधन मात्र थी, न कि सामाजिक उन्नयन का माध्यम।

सन्दर्भः

सुमित गुहा, 1999 एनवायरनमेंट एंड एथिनीसिटी इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

इरफान हबीब, 1999 द अग्रेरियन सिस्टम आफ मुग़ल इंडिया, सेकंड एडिशन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली फ.जल, अबुल कृत आईन-ए- अकबरी

हबीब, इरफान; द पीजेन्ट इन इण्डियन हिस्ट्री प्रोसेडिंग आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1982

हबीब, इरफान; मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहासः एक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

डब्ल्यू.एच.मोरलेंड,1983 (पुनर्मुद्रण) इंडिया एट द डेथ आफ अकबरः एन इकोनामिक स्टडी ओरियंटल, न्यू दिल्ली

मोरलैण्ड, डब्ल्यू0 एच0; द एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

तपन रायचैधरी एंड इरपफान हबीब (संपा),2004, द कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया, वोल्यूम1A, ओरियंट लोंगमैन, न्यू दिल्ली

डीटमर रोथरमंड,1993, एन इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया फ्राम प्री-कोलोनियल टाइम्स टू 1991,राउटलेज, लंदन

संजय सुब्रह्मण्यम (संपा),1994 मनी एंड दि मार्केट इन इंडिया आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

गफ, कैथलीन; 1974 इण्डियन पीजेन्ट अपरागिग्स, इकानामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, बम्बई स्पेशल नम्बर,

ए0 आर0 देसाई पीजेन्ट स्ट्रगल इन इण्डिया (सं0) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू दिल्ली

ग्रोवर,बी0 आर0; नेचर एण्ड लैण्ड राइट्स इन मुगल इण्डिया आइ0 ई0 एस0 एच0 आर01,1963

चन्द्र, सतीश, उत्तर मुगलकालीन भारत; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अली, सैयद असलम, कृषकः कृषक समुदाय के विभिन्न स्तर, उद्धृत हरिश्चन्द्र वर्मा (सं0) मध्यकालीन भारत, भाग-2 हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

चन्द्र, सतीश, सम आस्पेक्ट्स आफ इण्डियन विलेज इन नार्दन इण्डिया ड्यूरिंग द 18th सेन्चुरी आइ0 एच0 आर01,1974

राधेश्याम, सल्तनतकालीन सामाजिक व आर्थिक इतिहास, वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद

Corresponding Author: Dr. Ambika Prasad Tiwari
E-mail: ambikabpg@gmail.com
Received 4 October 2024; Accepted 25 October 2024. Available online: 30 October, 2024
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License